

वैदिक अन्वारख्यान-साहित्य

प्रो. ओम् प्रकाश पाण्डेय

‘अन्वारख्यान’ शब्द का प्राचीनतम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में तीन बार है। पहली बार यह आगे किये जाने वाले कथन या विवेचन के अर्थ में प्रयुक्त है - ‘यद् भिन्नायै प्रायश्चित्तिरुत्तरस्मिंस्तद् व्याख्याने।’^१ इसका अभिप्राय है कि उरवा के टूट जाने पर क्या प्रायश्चित्त हो, इसको आगे बतलाया जायेगा। प्रायः इसी अर्थ में वहाँ दूसरी बार भी यह शब्द उल्लिखित है - ‘यद् भिन्नायै प्रायश्चित्तिमाहोत्तर स्मिंस्तद् न्वाख्यानऽइति’^२ इसका अर्थ है कि पहले कहा था कि इसकी आगे व्याख्या (की जायेगी) तीसरे सन्दर्भ में ‘स्पष्ट रूप से यह ग्रन्थविशेष के प्रसङ्ग में व्यवहृत है - ‘तस्मादाहुनैतदस्ति यद्वासासुरम् यदिदमन्वारख्याने त्वद् उद्यत इतिहासे त्वत्’^३, सायणाचार्य ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है - ‘अन्वारख्याने सृष्ट्यनुक्रमकथनरूपेऽस्मिन् ब्राह्मणे यदिदं देवैः सार्द्धमसुरसृष्टिप्रतिपादनम्।’ यहाँ यह इतिहास से पृथक् ऐसे ग्रन्थ का द्योतक है कि जिसमें सृष्टि का आनुक्रमिक प्रतिपादन हो। सायण का सङ्केत शतपथदि ब्राह्मणी के तद्विषयक अंशों से है।

‘अन्वारख्यानम्’ के रूप में एकमात्र उपलब्ध ग्रन्थ ‘वाधूल अन्वारख्यानम्’ है। उसमें पौनः पुन्येन ‘अन्वाहुः’ भी प्रयुक्त है - ‘इद वा अन्वाहुः’।^४ इसके बाद कोई न कोई आख्यायिका भी उल्लिखित है।^५ जहाँ कोई आख्यायिका नहीं है, वहाँ किसी पूर्व विचार-विमर्श का उल्लेख है।^६ ‘अन्वाहुः’ के पहले या अतिरिक्त ‘तदाहुः’ का भी भूरिशः प्रयोग है।^७ जहाँ-जहाँ मात्र ‘आहुः’ का उल्लेख है, वहाँ-वहाँ ‘किम्’ ‘कथम्’ सदृश प्रश्नवाचक पदों का व्यवहार करते हुए कोई-न-कोई शङ्का उपस्थापित है, यथा-६ तदाहुर्या प्रथमामाहुति जुहोतीति किन्तया जयतीति ?^८ इन स्थलों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष सरलता से निकलता है कि ‘अन्वारख्यान’ का अभिप्राय किसी प्राचीन आख्यायिका या विचार-विमर्श के प्रसङ्ग के उल्लेखपूर्वक

^१ शत.ब्रा. ६.५.२.२२;

^२ तदेव ६.६.४.७;

^३ तदेव ११.१.६.९;

^४ वाधूल अन्वारख्यानम् १.१.७१

^५ वाधूल अन्वारख्यानम् १.१.७१

^६ तदेव १.१.७.१ ;

^७ तदेव २.८.१.;

^८ तदेव २.७.१ ;

ब्रह्मवादियों के द्वारा उठाये गये प्रश्नों का समाधान करना है, जो ब्राह्मण ग्रन्थों की सामान्य प्रवृत्ति है। उपलब्ध 'अन्वाख्यान' का सम्पादन और प्रकाशन हुआ।

वैदिक वाङ्मय के प्रकाशित और हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्रों में 'वाधूल अन्वाख्यानम्' के अतिरिक्त कोई अन्य 'अन्वाख्यान' श्रेणी का ग्रन्थ नहीं मिलता है। वाधूल शाखीय वैदिक साहित्य के सर्वप्रथम सन्धान का श्रेय प्रो. डब्ल्यू कालान को है, जिन्हें १९२०-२१ में इस शाखा के ग्रन्थलिपि में लिखित आर्यदास अथवा आचार्यपाद के द्वारा प्रणीत 'कल्पागमसंग्रह' कतिपय कारिकाएँ एवं शिवश्रौन-कृत 'प्रयोगसन्दर्भ' और वाधूलसूत्र के हस्तलेख उपलब्ध हुए। इसके २४० पृष्ठों में से प्रथम २११ पृष्ठों में श्रौतसूत्र-भाग था, और शेष भाग ब्राह्मणग्रन्थों के सदृश था, जिसमें अग्न्याधेय, अग्निहोत्र और पशुबन्धों का निरूपण था। कालान को इस ब्राह्मणसदृश ग्रन्थ के शेषभाग का भी हस्तलिखित प्रति देवनागरी लिपि में प्राप्त हो गई। इसे सम्पादित कर उन्होंने 'ऐक्टा-ऑरियण्टालिया' को चतुर्थ एवं षष्ठ भागों के रूप में १९२६ में, प्रकाशित करा दिया। यह कार्य रोमन लिपि में है।

कालान के इस कार्य के प्रायः ५० वर्ष बाद प्रो. मिशेल वित्सेल को भी वाधूल शाखा के कुछ हस्तलेख मिले जो, कालान के द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ के अनुरूप ही थे। उन्होंने १९७५ ई० के अपने एक शोध-पत्र में, 'अन्वाख्यान' सञ्ज्ञक इस ग्रन्थ की विस्तार से विवेचना की।^९

सन् १९८९ से १९८२ के मध्य जापान के क्योतो विश्वविद्यालय के प्रो. यासुके इकारी को केरल के तिठानन्तपुरम् में, मलयालम लिपि में लिखित वाधूल शाखीय कतिपय हस्तलेख प्राप्त हुए। इनमें वाधूलशाखा के गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र एवं अन्वाख्यान सभी हैं। प्रो. इकारी ने अपने एक शोध-पत्र में उपलब्ध हस्तलेखों की सर्वेक्षणात्मक समीक्षा^{१०} क्योतो विश्वविद्यालय को ही एक कार्यशाला में की। स्व. प्रो. बी.बी. चौबे (होशियारपुर) के आग्रह पर प्रो. इकारी ने अपने शोधलेख और उपलब्ध सभी हस्तलेखों की छायाप्रतियाँ उन्हें उपलब्ध करा दीं, जिनके आधार पर प्रो. चौबे ने 'वाधूल श्रौतसूत्र' और 'वाधूल-अन्वाख्यान' के संस्करण सन् २००१ के आस-पास सम्पादित कर प्रकाशित किये।

'वाधूल-अन्वाख्यान' का स्वरूप एवं विन्यास वैदिक अन्वाख्यान साहित्य के इस एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ के स्वरूप के विषय में विद्वानों के मध्य प्रचुर मतभेद हैं। प्रो. कालान ने यह अभिमत प्रकट किया है कि इस की याग-मीमांसा ब्राह्मणग्रन्थों के पूर्णतया आर्यदास की व्याख्या में उपलब्ध

^९ Witzel, Michael : 'Einc Fiinfte Mitterilungiberdas VADHULASUTRA' – studien zur Indologic and Iranistic, Reinbek, Germany (1975) PP 75-108

^{१०} प्रो. इकारी ने ही सर्वप्रथम वाधूल श्रौतसूत्र का समीक्षात्मक संस्करण सम्पादित किया, जिसकी सूचना क्योतो विश्वविद्यालय को शोधपत्रिका Annals of the Institute for Research Humanities Kagaru Kenkysyo के ३० नवम्बर १९९५ के अङ्क में उपलब्ध है।

सङ्केतों के आधार पर उन्होंने यह धारणा प्रकट की कि ‘अन्वाख्यान’ नाम ब्राह्मणग्रन्थों के लिए ही प्रचलित था। लेकिन ‘वाधूलसूत्र’ में ‘अन्वाख्यान’ के रूप में ब्राह्मणग्रन्थों के सदृश अंशों का अस्तित्व होने पर भी उन्होंने उसे सूत्रग्रन्थ की ही सञ्ज्ञा दी। प्रो. वित्सेल ने अनुब्रह्मणों के ही ‘अन्वाख्यान’ नाम से प्रसिद्ध होने का मत व्यक्त किया। तदनुसार ‘वाधूल अन्वाख्यान’ एक अनुब्राह्मण है। अनुब्राह्मण के रूप में सामान्यतः सामवेदीय देवताध्याय, सामविद्यानादि से असाहमत्य व्यक्त करते हुए, इसे मात्र ‘अन्वाख्यान’ मानने का आग्रह प्रकट किया। उनका कथन है कि यह कल्पसूत्रों के प्रणयन-काल के आस-पास की रचना है, जिसका कुछ सादृश्य तो ब्राह्मण ग्रन्थों से है, लेकिन यह उस तरह का ब्राह्मणग्रन्थ नहीं है, जिस प्रकार अन्य ब्राह्मण ग्रन्थ है।

इन तीनों ही मतों में कालान का मत ही सही प्रतीत होता है, क्योंकि हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशन्सा, संशय, विधि, परक्रिया, पुराकल्प, व्यवधारण इत्यादि के माध्यम से जैसी याग मीमांसा अन्य ब्राह्मणग्रन्थ मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं प्रतीत होती है, वह वाधूल अन्वाख्यान ब्राह्मण में भी है। अतएव इसे वाधूल शाखीय ब्राह्मणग्रन्थ मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं प्रतीत होती है। सम्भवतः इसी आधार पर सायण ने भी इसे ब्राह्मण ही माना है। वाधूलशाखीय अन्वाख्यान से वे परिचित थे या नहीं- इसकी जानकारी हमें भले ही न हो, लेकिन शतपथ ब्राह्मणोक्त ‘अन्वाख्यान’ पद की व्याख्या उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थ के रूप में ही की है। स्वरूपजन्य भ्रान्ति का कारण है वाधूल श्रौतसूत्र पर आर्यदास की व्याख्या का यह अंश, जिसमें ‘अन्वाख्यान’ शब्द का प्रयोग संज्ञा के स्थान पर किया कारैरन्वाख्यायते।^{११} श्रौतसूत्र में ही एक स्थल पर अन्वाख्याओं का परिगणन ऋचाओं, यजुषों, सामों, रूप-समृद्धि,^{१२} के ज्ञापक अंशों, गाथाओं और नाराशंसियों के मध्य किया गया है।^{१३}

ब्राह्मण ग्रन्थों के बहुचर्चित लक्षण – हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशन्सा इत्यादि, जो प्रकृत्या इस ग्रन्थ में भी सुलभ हैं, के उदाहरण आगे प्रदेय हैं।

‘वाधूल-अन्वाख्यानम्’ के ब्राह्मणग्रन्थ अथवा तत्सदृश होने पर भी, इस तथ्य का अपलाप नहीं किया जा सकता है कि इस ग्रन्थ में ‘अन्वाख्यान’ शब्द का अनेक बार विभिन्न सन्दर्भों में, कभी संज्ञा और कभी क्रियारूप में प्रयोग हुआ है। संज्ञारूप में प्रयोग के कुछ उदाहरण ये हैं –

(क) एतत् पुनर्जनित्तं नामान्ताख्यानम्^{१४}

(ख) एतदुपनिषदादानमन्वाख्यानम्^{१५}

^{११} वाधूल श्रौतसूत्र (३.१.२४) पर व्याख्या।

^{१२} एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यदुपसमृद्धं यत्क्रियमाणं कर्म ऋग्येजुर्वाऽभिवदति-ऐते०वा० १.४ ;

^{१३} वाधूल-अन्वाख्यानम् ४.१४.३;

^{१४} वाधूल अन्वा० ४.६७.१३;

^{१५} वाधूल अन्वा० ४.२६.२;

- (ग) एतदेव श्रीर्नामान्वाख्यानम्^{१६}
 (घ) एतं पञ्चाशतं प्राणभृतामन्वाख्यानम्^{१७}
 (ङ) पञ्चाशदपानभृतामन्वाख्यानम्^{१८}
 (च) पूर्णा हुतेरेवान्वाख्या नमभि सम्पद्यते (१.१३.२)^{१९}

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि 'अन्वाख्यान' शब्द का प्रयोग कतिपय विवरणों के आदान अथवा पुनः कथन के सन्दर्भ में ही उसी प्रकार हुआ है, जिस प्रकार पाणिनीय व्याकरण में, 'अनुवर्तन' प्रक्रिया प्रचलित है और यह 'अन्वाख्यान' की प्रक्रिया 'वाधूल-अन्वाख्यानम्' में विशेष रूप से परिलक्षित होती है।

वाधूल शाखा –

कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध यह शाखा स्वतन्त्र थी या किसी अन्य शाखा से सम्बद्ध थी? सत्याषाढ श्रौतसूत्र पद उपलब्ध 'वैजयन्ती' संज्ञक भाष्य के प्रणेता ने तैत्तिरीय शाखा के सूत्रकारों में वाधूला का भी उल्लेख सम्मनपूर्वक करते हुए इसे केरल प्रदेश में प्रचलित बतलाया है –

'वाधूल आचार्यवरोऽकरोत् परं सूत्रं तु यत् केरलदेशसंस्थितम्।'

'परम' शब्द से ज्ञात होता है कि यह तैत्तिरीय शाखा की उपशाखा थी। लेकिन एक धारणा यह भी है कि यह स्वतन्त्र शाखा थी, क्योंकि वाधूल श्रौतसूत्र में विहित अनेक मन्त्र तैत्तिरीय संहिता या ब्राह्मण में नहीं मिलते हैं। अनेक मन्त्र तैत्तिरीय शाखोक्त मन्त्रों से कुछ भिन्न स्वरूप वाले हैं। यथा वाधूल श्रौतसूत्रोक्त मन्त्र 'देवो वः सविता प्रस्यतु' (२.१.११) मन्त्रे तैत्तिरीय संहिता से 'देवो वः सविता प्रार्पयतु' (तैत्ति० सं० १.१.१.१.) रूप में मिलता है। मन्त्रों के विनियोगों में भी कहीं-कहीं अन्तर मिलता है। लेकिन सूत्रग्रन्थों में ये अन्तर स्वभावतः पाये जाते हैं। संभव है कदाचित् वाधूलशाखानुयायी किसी तैत्तिरीयेतरशाखीय संहिता से भी सम्बद्ध रहे हों यद्यपि तैत्तिरीय शाखा के अन्य सूत्रकार प्रायः खाण्डिकेयशाखा के अनुयायी हैं, लेकिन डॉ. चिं. ग. काशीकर भी वाधूलों के खाण्डिकेयेतर मन्त्र-सङ्ग्रह के अनुयायित्व की सम्भावना को अस्वीकार नहीं करते हैं। उनका विचार है कि वाधूल श्रौतसूत्र, अनेक अंशों में, बौधायन श्रौत सूत्र के सदृश है। यह भी बौधायन के सदृश मात्र श्रौतसूत्र न होकर 'प्रवचन' श्रेणी का ग्रन्थ है और विपुल परिमाण में ब्राह्मण अंशों के उद्धरणों से भी युक्त है। वाधूल की भाषा भी

^{१६} वाधूल अन्वा० ४.७८.२;

^{१७} वाधूल अन्वा० ४.२६.३;

^{१८} वाधूल अन्वा० ४.२६.३;

^{१९} वैजयन्ती – भाष्यभूमिका, श्लोक- ९ ;

पुरातन या प्रायः अप्रचलित प्रयोगों से परिपूर्ण है। कालान ने भी बौधायन श्रौतसूत्र और वाधूल श्रौतसूत्र के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध को स्वीकार किया है। उन्होंने वाधूल की अधिक प्राचीनता की भी, बौधायन की अपेक्षा सम्भावना प्रकट की है। लेकिन किसी विशिष्ट प्रमाण के अभाव में डॉ. काशीकर, बौधायन और वाधूल श्रौतसूत्र के मध्य पर्याप्त सादृश्य स्वीकारते करते हुए भी वाधूल को बौधायन की अपेक्षा परवर्ती मानने के पक्ष में हैं।^{२०}

वाधूल श्रौतसूत्र में, ‘अन्वाख्यान’ के बहुसङ्ख्यक उद्धरणों के समावेश से यह स्पष्ट है कि इसका प्रवचन अथवा प्रणयन श्रौतसूत्र की अपेक्षा पर्याप्त पहले हुआ होगा।

बाधूता-अन्वाख्यान के रचयिता- मूल ग्रन्थ में ही इस शाखा के प्राचीन आचार्यों अथवा प्रवचनकारों की परम्परा का उल्लेख है – ‘एतद्धवै सौबभ्रुवो धेयमवोचाम इति।^{२१} इसके अतिरिक्त ‘तदु हो वाचावाधूलः’ इत्यादि वचन इस अन्वाख्याने (अथवा ब्राह्मण) के वाधूल – परम्परा से सम्बन्ध के सुस्पष्ट द्योतक हैं। यों परम्परा के मूल पुरुष सौबभ्रु प्रतीत होते हैं, जिन्होंने इसका उपदेश वाधूल को किया। उनसे यह परम्परा आगे पुरोवर्तित हुई। बौधायन प्रवरसूत्र (६.४.२१.५) में वाधूल का उल्लेख यस्कगण में है- ‘यस्का मौनो मूको वाधूलो वर्ष पुष्यो- इत्येते यस्काः। आगे यह नाम एक गौत्र बन गया। कालान ने भी यही माना है। पाणिनि ने भी कार्तिकौतपादिगण में वाधूल का उल्लेख किया है (अष्टा. ६.२.३७)। अनन्ताचार्य ने अपने ग्रन्थ ‘प्रपन्नामृतम्’ की भूमिका में स्व. गुरु श्रीनिवासाचार्य को वाधूलगोत्री बतलाया है।^{२२} इसी प्रकार गार्ग्य गोपालरंगराज को वाधूलगोत्री कहा है।^{२३} स्टाल का अभिमत है कि तैत्तिरीय शाखाध्यायी नम्बूदिरी ब्राह्मणों में दस प्रतिशत वाधूलगोत्री हैं। ये अपनी, वेदपाठ की मौखिक परम्परा से अपरिचित हैं।^{२४}

वाधूल अन्वाख्यान में, चूँकि वाधूल का उल्लेख अत्यन्त सम्मान्य रूप में है, इस कारण कालान का अभिमत है कि वे स्वयं इसके रचयिता नहीं हो सकते हैं। आर्यदास ने ‘कल्याणसंग्रह’ में चार

^{२०}From this comparative study, it may be concluded that Vadhula was posterior to Baudhayana the author of the main Bandhayana text. The Vadhs was compused before the composition of the dvaidha, karmanta, and Prayscitta sections of the Baudhss....Consequentey the chronological difference between Baudhayana and Vadhula Could be very little – Kashikar, C.G. Intro. Baudhss ; PP 38 (IGNCA)

^{२१} वा. अन्वा. १.७.८;

^{२२} वाधूलश्री निवासार्यपादाम्भोजोपजीवनम् – प्रपन्नमृतम् १.१;

^{२३} वाधूलान्वयरंगराजविदुषः : शिष्येण विद्यानिधेः – आप. शुल्व

^{२४} Stal, J.F. Namboodiri Veda Recitation, PP. 62

वाधूलों का उल्लेख किया है,^{२५} ये हैं – कौण्डिन्य, अग्निवेश्य, गारव (अथवा गालव) तथा शंख । लेकिन वाधूल-अन्वा. में इनका कोई उल्लेख न होने के कारण इस अन्वाख्यान ब्राह्मण का कोई रचयिता, इनमें से नहीं प्रतीत होता है । कालान का कथन ठीक प्रतीत होता है।^{२६}

वस्तुतः सभी ब्रह्मण ग्रन्थ प्रोक्त हैं । पहले यह कहा जा चुका है, कि बौधायन के सदृश वाधूल भी प्रवचनकार अथवा प्रवक्ता हैं – अतः यही निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि वाधूल के प्रवचन के बाद उनकी शिष्य-परम्परा ने ही इस अन्वाख्यान का प्रणयन किया ।

वाधूल-अन्वाख्यान की विषयवस्तु और उसका विभाजन -

यह पाँच प्रपाठकों और बहुसङ्ख्यक पटलों में विभक्त है । प्रपाठक-क्रम से पटलों की सङ्ख्या इस प्रकार है – (१) १९, (२) १३, (३) १३, (४) ९४, (५) ३४ पटल।^{२७} है । प्रथम प्रपाठक में अग्न्याधेय सम्बन्धी कृत्यों का निरूपण है । जैसाकि पहले कहा गया, इस ब्राह्मण अथवा तत्सदृश ग्रन्थ में प्रत्येक यागीय कृत्य का प्रतिपादन विशिष्ट आख्यानों के माध्यम से किया गया है । देवों ने यज्ञानुष्ठान से स्वर्ग को कैसे प्राप्त किया, इसका निरूपण यहाँ पुरुरवा और उर्वशी के आख्यान के माध्यम से किया गया है, जिसका विशेष विवरण आगे आख्यानों के प्रसङ्ग में दिया जायेगा । वाक और मनस् का यज्ञ से विशेष सम्बन्ध भी यहाँ स्थापित किया गया है । इस अनुष्ठान से मनुष्यों के अङ्गों का समुचित विकास हुआ । पुरुरवा और उर्वशी का पुत्र उपायु ही यहाँ अग्नि कहा गया है, जो अन्नद है। अग्नियों भी तीन कहीं गई हैं – सूतकाग्नि, दहनाग्नि और स्त्रियों की उपस्था: ब्रह्मौदन – पाक का सम्बन्ध पौर्णमासी, अष्टका एवं अमावस्या से स्थापित है । इन तीन दात्रियों में सोने वाले का पाप-भाजन कहा गया है, और जो अग्न्याधेय के निमित्त जागरण करता है, वह पापमुक्त हो जाता है । आदित्यों और राजन्यों की उत्पत्ति, आहिताग्नि का महत्त्व भी वर्णित है। आध्यात्मिक दृष्टि से गार्हपत्य आहवनीय और राजन्यों की उत्पत्ति, आहिताग्नि का महत्त्व भी वर्णित है। आध्यात्मिक दृष्टि से गार्हपत्य आहवनीय और अन्वाहार्यपचन संज्ञक अग्नियों को क्रमशः तितिक्षा, सत्य और श्रद्धा का प्रतीक कहा गया है। इसी क्रम में, गार्हपत्य को प्राणस्वरूप, आहवनीय को चक्षुस्वरूप और अन्वाहार्यपचन को श्रोत्रस्वरूप बतलाया गया है। भूः, भुवः और सुवः इन तीन सहाय्याहृतियों से भी इन अग्नियों का तादात्म्य स्थापित है। १० पटल में अग्न्याधान करने वालों के दो भेद कथित हैं- आहिताग्नि और निहिताग्नि । अग्नि उद्धरण संज्ञक कृत्य को

^{२५} अग्निवेश्यगृह्यसूत्रम्, भूमिका, पृ. ३;

^{२६} एक्टा ओरियण्टालिया, भाग - ४, पृ. ४-५

^{२७} हस्तलेखों में प्रपाठक शब्द का उल्लेख नहीं है । यह वा. श्रौतसूत्र के अनुकरण पर चौबेजी ने किया है।

अमृताहुति कहा गया है। सामविहीन यज्ञ यज्ञ नहीं होता है। आहवनीय अग्नि अग्निहोत्र के सम्पन्न होने की द्योतक है और अग्निहोत्र समस्त यज्ञानुष्ठानों का प्रवेश द्वार है। आगे पवमान, पावक और शुचि संज्ञक अग्नियों के लिए अष्टकपाल पुण्ड्राश तथा आदित्य के लिए चरु-प्रदान का विवेचन है। १७ वें पटल में सम्बत्सर के परिवत्सर, इदावत्सर, इदवत्सर और वत्सर का विवरण है। आगे के पटलों में दक्षिणा इत्यादि का विवरण है।

द्वितीय प्रपाठक - में अग्निहोत्र सम्बन्धी कृत्यों का महत्त्व निरूपित है। अग्नि में प्रथम तीन समिधाओं का आधान तीनों लोकों का प्रतिनिधित्व करने वाला है। छठे पटल में अग्निहोत्र के दो भेदों - अन्तर्ज्योतिरग्निहोत्र तथा बहिर्ज्योतिरप्रदीप्त वन्हि में आहुति डालने को ब्रह्मवर्चस् का प्रतीक कहा गया है। इसी क्रम में उपस्तीणीभिधारित अग्निहोत्र का महत्त्व उपपादित है। आध्यात्मिक दृष्टि से अग्निहोत्र आत्मदक्षिण अनुष्ठान है, जिसमें अपनी ही आहुति प्रतीकात्मक रूप से प्रदेय है। सप्तदश अग्निहोत्र में दुग्धाहुतियाँ १७ देवों के निमित्त दी जाती हैं। ये हैं- रुद्र, वायु, अश्विनयुग्म, सोम, वरुण, विश्वेदेवाः, पूषन्, सरस्वती, मित्र, धाता, बृहस्पति, सविता, द्यावापृथिवी, इन्द्राग्नी, अग्नि, प्रजापति और इन्द्र। १७ की यह सङ्ख्या प्रजापति की उपलक्षक है। ११ वें प्रपाठक में आरुण, कौषीतकि, वाजसनेय और आरुणि के मध्य हुए याग-सम्बन्धी संवाद का विवरण है। १२ वें पटल में यजमान की कामनाओं के अनुसार यज्ञोपादानों-भ्राज्य, नवनीत, सोम, पयस, यवागू आपः, औषधियों, वनस्पतियों, तण्डुल, ओदन इत्यादि की समीक्षा है। यदि ये अनुपलब्ध हों, तब भी यज्ञानुष्ठान कैसे किया जा सकता है, इस विषय पर जनक और वाजसनेय विचार-विमर्श करते हुए दिखते हैं।

तृतीय प्रपाठक - में प्रमुख रूप से पशुबन्ध-सम्बन्धी कृत्यों की चर्चा है। कहा गया है कि जब पशुबन्ध याग में व्रतो-पायन, अपां प्रणयन, आज्यभागौ, प्राशिन्नावदान, अन्वाहार्य-आहरण, फलीकरण होम और विष्णुक्रम- ये सात कृत्य सम्पन्न होते हैं, तो वह दृष्टि या महायज्ञ कहलाता है। आगे प्राप्य एक आख्यान के अनुसार प्रजापति ने चक्षु, प्राण, अपान, मनस, आत्मन, श्रौत, अङ्गों, हृदय, रेतस, शरीर और वाक् की सृष्टि की। ये सभी क्रमशः सूर्य, वात, अन्न, लोक, अन्तरिक्ष, दिशाओं, अङ्गिरस, मरुतों, आपः, पृथ्वी और सरस्वती में प्रविष्ट हो गये, इन्हें रोकने के लिए ही प्रजापति ने तप करके पशुबन्धों के रूप में समाधान का साक्षात्कार किया। इसी क्रम में मानसीन नामक पशुबन्ध की चर्चा है, जो मन में अनुष्ठित होता है और जिससे मानसिक अवयवों का विकास होता है। आगे प्रायश्चित्तों और पशुबन्धों का विवरण है।

इस प्रसङ्ग में अग्नि के पांच प्रकारों अहित, अहृत, उहृत, प्रहृत और विहृत का महत्त्वख्या पेट है। ये क्रमशः गार्हपत्य, अन्वाहार्यपचन, आहवनीय और पर्यग्नि हैं। आहवनीय के ही उद्धृत और प्रहृत ये दो भेद हैं।

चतुर्थ प्रपाठक - में प्रमुख रूप से अग्निष्टोम सम्बन्धी अन्वारख्यानों का कथन है। देवों और दीक्षित व्यक्ति की मनस्थितियों का कथन है। देवयजनसम्बन्धी निरूपण उल्लेखनीय है। सामान्यतः देवयजन वह स्थान है, जहाँ सोमयागानुष्ठान किया जाता है। आध्यात्मिक और आधिदैविक दृष्टियों से देवयजन केवल इतना ही नहीं है। वह अग्नि, आपः, ओषधियों, वनस्पतियों, पशुओं, पयस, दधि, आज्य, अन्न, मांस, सोम, पुरुष और ब्राह्मणे का भी प्रतीकात्मक रूप से प्रतिनिधित्व करता है। जहाँ तक ब्राह्मण की बात है, वही ब्राह्मण देवयजन कहला सकता है, जो अनूचान (वेदज्ञ), बन्धुमान, आचरणवान् और संशितव्रत हो। चतुर्थ एवं पञ्चम पटलों में अग्नि मेघ, पुरुषमेघ, अश्वमेघ, गोमेघ, अविमेघ, अजमेघ, व्रीहिमेघ और यवमेघ का महत्त्व प्रदर्शित है। पुरोडाश का निर्माण व्रीहि और यव से किया जाता है। आगे के निमित्त एकादशकपाल विहित हैं। आध्यात्मिक और अधिदैविक दृष्टियों से दीक्षा जल, विद्युत, गर्जना, मनस, वाक् तथा वायु इत्यादि सभी का प्रतिनिधित्व करती है। इन्द्र के 'मधवा' नाम के विषय में एक नया निर्वचन मिलता है। वह यह कि उनका यह नाम इसलिए पड़ा, क्योंकि वे माघ मास में उत्पन्न हुए थे- 'इन्द्रो जातो, माघे ह वै जातस्तस्मान्नु ह मधवन्नाम' (४.१२.४)। अन्यत्र 'मद्य' शब्द धनवाचक माना गया है। आगे के पटलों में ऋक्-साम-सम्बन्ध, सम्बन्ध, कृष्णाजिन की त्रिवेदमयता, क्रदू और सुपर्णा का आख्यान आत्थ्येष्टि, इडान्त यज्ञक्रतु, तानूनम्र ग्रह, उपसद इष्टि, कृत, त्रेता, द्वापर और कलि-इन चार युगों की उत्पत्ति वेदि-निर्माण, रुद्र के द्वारा त्रिपुरदाह (बीज रूप में-) यूप का महत्त्व और उसके प्रकारों, कुरु जनपद के राजा अजातशत्रु को ज्ञान-प्रदान, विभिन्न ग्रहों, इत्यादि का विवरण है। ६८ वें पटल में, यजमान को स्वर्ग प्राप्ति कराने के स्वरूप को ग्रहण करने का उल्लेख है। ७३ वें पटलों में अग्निहोत्र, पौर्णमास, दूर्श, चातुर्मास्य, पशुबन्ध एवं सौम्य अध्वरजन्य आहुतियों की सङ्ख्या का विचार है। इसी अनुक्रम में बहुविध देवयजनों के महत्त्व और निर्माण का विवरण है। इस प्रपाठक में अग्निष्टोम अन्वारख्यान को 'उपनिषद्' कहा गया है।

पञ्चम प्रपाठक - में प्रमुख रूप से अग्निचयन सम्बन्धी अन्वारख्यान समाविष्ट हैं। अग्निचयन का महत्त्व 'इष्टका' और 'चिति' शब्दों के निर्वचनों के माध्यम से बतलाया गया है। पाँचवें पटल में उखा-निर्माण की सामग्री का विवरण है। यह उखा ही अग्नि का आधार मानी जाती है। अतः सर्वप्रथम उखा-कर्म करने का निर्देश है। पशुकर्म का अनुष्ठान यव और व्रीहि से करने का विधान है। सामिघनी मन्त्रों का पाठ यहाँ भी विहित है। विभिन्न चितियों के निर्माण की प्रक्रिया इस प्रपाठक में विशेष रूप से

निरूपित है। अन्तिम पटल में समस्त द्रष्टकाओं की सङ्ख्या के उल्लेख से यह ‘अग्निचयनान्वाख्यान’ (जैसाकि कहा गया है-) सम्पन्न होता है।

उपलब्ध आख्यान – वाधूल अन्वाख्यान ब्राह्मण आख्यानों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। इसमें छोटे-बड़े सभी वीस आख्यान प्राप्त होते हैं, जिनमें से पुरुरवा और उर्वशी का आख्यान प्रमुख है वास्तव में उसी से ग्रन्थ का आरम्भ होता है। आख्यान इस प्रकार है- यज्ञानुष्ठान के माध्यम से स्वर्ग पहुँचे देवों को यह प्रतीत हुआ कि मनुष्यों के द्वारा ठीक से यज्ञ न करने के कारण उनके यजमानों के धड़ तो बढे, लेकिन अन्य अङ्ग वृद्धि को नहीं प्राप्त हुए। यज्ञाहुतियाँ भी देवों तक नहीं पहुँच सकीं। इसलिए देवों ने वाक् और मनस् से मनुष्यों के पास जाकर, उनके लिए यज्ञानुष्ठान करने के लिए कहा। वाक् और मनस् ने इसका पालन किया। मनस् वाक् में प्रविष्ट हो गया, जिससे मनु उत्पन्न हुए। मनु ने इडा में प्रवेश किया, जिससे पुरुरवा का जन्म हुआ। इडा ने पुरुरवा में प्रवेश किया, जिससे उर्वशी उत्पन्न हुई। मनुष्यों ने पुरुरवा को अपना राजा मान लिया और गन्धर्वों ने उर्वशी को पुत्री के रूप में स्वीकार किया। ये दोनों मनुष्यों के लिए यज्ञ करने के निमित्त आस-पास विचरण करने लगे। आखेट के लिए पुरुरवा की भेंट अप्सराओं से हुई और उनमें से उर्वशी को उसने अपनी पत्नी बना लिया। उर्वशी ने एक के बाद एक क्रम से तीन शिशुओं को जन्म तो दिया लेकिन उन्हें फेंक दिया। चौथी बार गर्भवती होने पर उसने भविष्यवाणी की, कि इस बार का शिशु देवों और मनुष्यों दोनों के लिए अन्नाद होगा तद्दुसार उत्पन्न शिशु का नाम हुआ आयु। गन्धर्वों ने अपने इस दौहित्र को यज्ञ का वरदान दिया। देवों ने इस गन्धर्वों को वषट्कार और आश्रवण से वंचित कर, केवल ‘दर्विहोम’ के रूप में मान्यता दी। पुरुरवा ने जब अपने शिशु और यज्ञ दोनों को एक साथ ले जाने में असमर्थता अनुभव की, तो उसने यज्ञ को वन में रख दिया और अपने साथ ग्राम में यात्रा शिशु को ला सका। बाद में जब वह वन में यज्ञ को लेने के लिए पहुँचा, तो वहाँ उसे यज्ञ के स्थान पर चारों और उगी हुई औषधियाँ, बर्हि, पवित्र, वनस्पतियाँ, इध्य, एघस् तथा शमी वृक्ष पर उगा अश्वत्थ मिला। देवों ने कहा कि यज्ञ का प्रत्यक्ष योग्य रूप यही है। उर्वशी के पहले फेंके गये तीनों पुत्र अग्नि के अग्रज (-सूतकाग्नि, दहनाग्नि और उपस्थाग्नि) हुए। यह आख्यान यज्ञ और अग्नि के उद्भव का कथन अग्न्याधेय के सन्दर्भ में करने के लिए व्यवहृत है।

इस अन्वाख्यान में आये अन्य प्रमुख आख्यान ये हैं –

- (२) अदिति से आदित्य और राजन्य की उत्पत्ति का आख्यान (१.४-५);
- (३) प्रजापति और अग्नि का आख्यान (२.१.१-४)
- (४) प्रजापति से मासों की उत्पत्ति का आख्यान (३.३.१-२)
- (५) पशुबन्धों के अनुष्ठान के लिए प्रजापति का देवों को निर्देश (३.१-५);
- (६) अग्निमेधादि की उत्पत्ति का आख्यान (४.४);

वैदिक अन्वाख्यान-साहित्य

- (७) अग्नि, वायु, आदित्य और वरुण की क्रमशः पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौः और नाक से संगति अथवा साध्चर्य का आख्यान (४.५.१-४),
- (८) प्रजापति के द्वारा असुरों, देवों एवं मनुष्यों (हीनकानों) को धन-वितरण (४.८.३-४)
- (९) प्रजापति के द्वारा छन्दों और खाद्यान्नों की सृष्टि । (४.१४.१-२);
- (१०) प्रजापति और वाक् का आख्यान (४.१६.३)
- (११) कद्रू और सुपर्णा का आख्यान (४.२९.१-७)
- (१२) चतुर्युगों की उत्पत्ति का आख्यान (४.३५.१-३)
- (१३) इन्द्र के सलावृकि रूप में आने का आख्यान (४.)

वाधूल अन्वाख्यान ब्राह्मण में उद्धृत आचार्य

इस ग्रन्थ में उद्धृत उन प्रमुख ऋषियों या विभिन्न सन्दर्भों में आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं, जिनके मतों को अन्वाख्यान के प्रवक्ता ने समय-समय पर प्रस्तुत किया है-

	आचार्य	सन्दर्भित यागीय कृत्य
१.	अङ्गिरस-गण (४.१५.६)	इनके द्वारा दृष्ट मन्त्र घोर होने के कारण अरण्य में अध्येय है।
२.	कुरुओं का राजा अजातशत्रु मैघतिथ (४.५०.१)	अनुवृत्ति आहुति का ज्ञान प्राप्त करने में संलग्न ।
३.	अथर्वा (४.१५.७)	ग्रामों में अध्येय 'शान्त' मन्त्रों के द्रष्टा ।
४.	अरुण औपवेशी (४.५२.२)	प्रातः सवन में सोमाभिषवन के प्रसङ्ग
५.	आरुण औपवेशी (४.५२.२)	प्रातः सवन में सोमाभिषवन के प्रसङ्ग में ।
६.	आरुणि (२.२.१)	अग्निहोत्र - मीमांसा के सन्दर्भ में कौषीतकि, वाजसनेय और आरुण के साथ उल्लिखित ।
७.	कवन्ध आथर्वण (४.२१.३)	दीक्षित की दीक्षा के सन्दर्भ में । सिंह के द्वारा भक्षित गाय के गृहपति ;
८.	केशी (पाञ्चालराज) (३.५.१-४)	प्रायश्चित्त - अनुष्ठान का इच्छुक । यागवेत्ता ।
९.	कौषीतकि (२.२.३)	अग्निहोत्र में पहली और दूसरी आहुतियों के सम्प्रदान के सम्बन्ध में विचार-विमर्शरत ।
१०.	खण्डिकेय औद्भरि (३.५.१-६)	पशुबन्धगत प्रायश्चित्तीय अनुष्ठानों का वेत्ता ।

‘वेदविद्या’ मूल्याङ्कित शोध-पत्रिका

११.	जनक (२.१२. १२-१३) विदेहराज	अग्निहोत्र के विषय में वाजसनेय याज्ञवल्क्य के साथ विचार- विमर्श में संलग्न ।
१२.	मधुक पैङ्ग (३.१.६.)	पशुबन्ध यागों के अनुष्ठान में यूप काष्ठ – विचार के सन्दर्भ में ।
१३.	महाशाल (४.७५.१०)	ज्ञान के लिए उत्सुक विद्वान् । ‘त्वष्टा’ को जानने का इच्छुक ।
१४.	यास्क (१.७.८)	सोबभ्रुव, जिनसे वाधूल ने अग्न्याधेय का ज्ञान प्राप्त किया से अग्न्याधेय के ज्ञान का प्राप्तकर्ता ।
१५.	वाधूल (१.७.८); प्रभृति अनेक स्थलों पर सादर उल्लिखित	इस अन्वाख्यान के सम्मान्य, प्रवचनकर्ता और वाधूल शाखा के प्रवर्तक ।
१६.	वाजसनेय (२.१२.३)	प्रातः – सायं अग्निहोत्र में प्रदेय आहुतियों के समाधानकर्ता ।
१७.	सुत्वा याज्ञसेन सारञ्जय (४.२०. १-९) सृज्यों के राजा	पाञ्चाल – सहयोगी; दीक्षा – विचार के प्रकरण में उल्लिखित ।
१८.	शुद्धोजा माण्डव्य (५.९. १-२)	पशुशीर्षविद्या के जिज्ञासु ।
१९.	सोबभ्रुव (१.७.८)	संभवतः इनके पिता सुबभु । अग्न्याधेय विषयक ज्ञान के उपदेष्टा । वास्तव में वाधूल अन्वाख्यान के भी यही मूल उपदेष्टा हैं ।

अनेक अज्ञातनामवाले, आचार्यों का उल्लेख इस ग्रन्थ में ‘एके’, केचित् तथा ‘ब्रह्मवादियों के उल्लेखपूर्वक है ।

वाधूल – अन्वा. ब्रह्मण में उपलब्ध कतिपय निर्वचन

अन्य ब्राह्मण इस ग्रन्थ में भी बहुसंख्यक निर्वचन प्राप्त होते हैं । उनमें से कतिपय अत्यन्त रुचिकर हैं । विषय-वस्तु के सन्दर्भ में ‘मधवन’ (इन्द्र) की चर्चा की जा चुकी है, जिसे यहाँ से धनवाचेक ‘मघ’ शब्द से निष्पन्न न मानकर माघ मास से सम्बद्ध कर दिया गया है । अन्य कुछ निरुक्तियाँ ये हैं –

अजा-

गायत्री उदपतत् चतुरक्षरा सती अजया ज्योतिषा, तमस्या अजाऽभ्यरुन्धतद् अजाया अजात्वम् (४.३०.२१) यहाँ 'अजा' शब्द 'उषस' के लिए व्यूहृत है, जो सूर्य से पहले उदय होती है – 'एषा ह वै साऽजो यैषा पुरस्ताद् आदित्यस्य औषसी उदेति।

अया-

यह शब्द छन्दों के लिए है, जो ' अगात् वा अस्मत् पाप्मा से निष्पन्न है – तात्पर्य यह वे छन्द 'अया' है, जिनसे पाप निकल गया ।

इष्टका –

इसे 'इष्ट' से सम्बद्ध किया गया है – इष्टम् इष्टमेव कं भविष्यतीति तदिष्टकानामिष्टकात्वम् (५.४.५)।

इष्टिः –

अन्य ब्राह्मणों की तरह यहाँ भी इसे 'ऽइष्' धातुअ से निष्पन्न बतलाया गया है – 'यदिष्टिभिः प्रेषमच्छँस्तदिष्टीनामिष्टित्वम्' (५.८.४) ।

कपालः -

इसकी निरुक्ति 'कम्' से प्रदर्शित है – 'को ह वै नाम कम् ह्येतत्कपालानां कपालत्वम्' (५.५.१०)।

क्षीरम् –

इसे 'क्षि' (क्षये - क्षिणोति) से निष्पन्न बतलाया गया है, क्योंकि क्षीर-सेवनपूर्वक देवों ने असुरों को क्षीण किया था और यजमान अपने सेवनपूर्वक देवों ने असुरों को क्षीण किया था और यजमान अपने शत्रुओं को क्षीण करता है – 'क्षीरेण वै देवा असुरानक्षीणन् तत्क्षीरस्यक्षीरत्वम् । एवं हैनेनैवविद् यजमानो द्विषतो भ्रातृव्यान क्षिणोति (२.१३.४) ।

दक्षिणा –

निरुक्त में इसे 'दक्ष' धातु से निष्पन्न बतलाया गया है । यहाँ भी वही परिलक्षित होती है – दक्षिणया दक्षयति तद् दक्षिणायै दक्षिणात्वम् (३.७.३) ।

पुरोडाशः –

पृथ्वी, मन्तरिक्ष इत्यादि को 'पूः' कहकर यह भाव पूरन्तरिक्षं पूरापः पूः, ता देवाः पुरादाशेनैव व्याश्रुवत तत्पुरोडाशस्य पुरोडाशत्वम् । पुरोदाशो ह तै नाम तं पुरोडाश इत्याचक्षते परोक्षैण, परोक्षप्रिया इव हि देवाः (४.५.६) ।

मनोता –

इसे 'मनस् + ऊता' से निष्पन्न बतलाया गया है – 'वाग्वै मनोतेति, वाग्वै मनोतेषा ह वै मनस्योता तन्मनोतायै मनोतात्वम्' (४.४४.४) ।

बाधूल अन्वा. ब्राह्मण की भाषा –

सामान्य इसकी भाषा ब्राह्मणग्रन्थों के अनुरूप ही है, लेकिन अनेक प्राचीन प्रयोग भी मिलते हैं। कतिपय उल्लेखनीय बिन्दु इस सन्दर्भ में ये हैं –

१. षष्ठी विभक्ति के अर्थ में चतुर्थी का बहुधा प्रयोग हुआ है; यथा – ‘तद् दक्षिणायै दक्षिणात्वम्’ (३.७.३)। यहाँ ‘दक्षिणायाः’ के स्थान पर दक्षिणायै का प्रयोग किया है।
२. सप्तमी (एकवचन) में, ‘न’ कारान्त पदों में प्रत्यय लुप्त है; यथा- ‘आत्मनि’ के स्थान पर ‘आत्मन’ का प्रयोग।
३. ‘अस्मद्’ शब्द के प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों के द्विवचन में ‘आवाम्’ के स्थान पर ‘आवम्’ का प्रयोग हुआ है।
४. सम्बोधन (एकवचन) में ‘भगवत्’ शब्द का रूप ‘भगवन्’ के स्थान पर ‘भगवः’ प्रयुक्त है (३.५.४-५)।
५. पुनरावृत्तिमूलक प्रयोग भी हुए हैं, यथा – अष्टावष्टौ (५.१९.१), अहरहः (१.१०.१०), इत्थमित्थम् (४.५०.१), यज्ञेयज्ञे (५.१५.२०) इत्यादि।
६. ‘अनुपलाय्य’ – (२.४.१) सदृश कृदन्त-प्रयोग भी है।
७. लुङ्लकार में ‘अकः’ (२.१.३), मंस्थाः (४.३२.५), अरीरिचः (३.८.६), अपूरि (४.७०.१-३) जैसे प्रयोग परिलक्षित होते हैं।
८. लोट्लकार का भी पुष्कल प्रयोग हुआ है; यथा – ‘असानि (४.४.२), वेदात् (४.५०.१), आरभासै (४.१३.४) इत्यादि।
९. लोट्लकार (मध्यम पुरुष, द्विवचन) में ‘तात्’ प्रत्यय वाले पद-प्रयोग हुए हैं – ‘जुगुतात् (४.५०.३), याजयतात् (४.५०.१) इत्यादि।
१०. वाक्य – रचना में ‘अथ, अथो, अथ ह, अथो खलु, अमुया, तथो, प्रभृतिअव्ययों का बहुधा प्रयोग हुआ है।
११. उपसर्गों का प्रयोग क्रिया से व्यवहित रूप में भी हुआ है।

प्रो. ओम् प्रकाश पाण्डेय
बी-१/४, विक्रान्त खण्ड,
गोमती नगर, लखनऊ २२६०१०